

मंगलेश डबराल, *हम जो देखते हैं*, नई दिल्ली  
(राधाकृष्ण प्रकाशन) 1995, repr. 1997

**गुमशुदा      Vermist      Mangalesh Dabral**

शहर के पेशाबघरों और अन्य लोकप्रिय जगहों में  
उन गुमशुदा लोगों की तलाश के पोस्टर  
अब भी चिपके दिखते हैं  
जो कई बरस पहले दस-बारह साल की उम्र में  
बिना बताये घरों से निकले थे  
पोस्टरों के अनुसार उनका क़द मँझोला है  
रंग गोरा नहीं गेहुँआ या साँवला है  
हवाई चप्पल पहने हैं  
चेहरे पर किसी चोट का निशान है  
और उनकी माँएँ उनके बग़ैर रोती रहती हैं  
पोस्टरों के अंत में यह आश्वासन भी रहता है  
कि लापता की ख़बर देनेवाले को मिलेगा  
यथासंभव उचित इनाम

तब भी वे किसी की पहचान में नहीं आते  
पोस्टरों में छपी धुँधली तस्वीरों से  
उनका हुलिया नहीं मिलता  
उनकी शुरुआती उदासी पर  
अब तकलीफें झेलने की ताब है  
शहर के मौसम के हिसाब से बदलते गये हैं उनके चेहरे  
कम खाते कम सोते कम बोलते  
लगातर अपने पते बदलते  
सरल और कठिन दिनों को एक जैसा बिताते  
अब वे एक दूसरी ही दुनिया में हैं  
कुछ कुतूहल के साथ  
अपनी गुमशुदगी के पोस्टर देखते हुए  
जिन्हें उनके परेशान माता-पिता जब-तब छपवाते रहते हैं  
जिनमें अब भी दस या बारह  
लिखी होती है उनकी उम्र.

(1993)